अनुसन्धान क्यों और कैसे?

मेरे बंधुओं!

सबको नमन, प्रणाम, आर्शीवाद देते हुए मैं आपसे अनुरोध करना चाह रहा हूँ - यह अनुसंधान क्यों और कैसे हुआ? उसके पहले मुझे यह भी बताने को कहा गया है - यथास्थिति से मुझे क्या परेशानी थी? मैं मानता हूँ, यहाँ पर जितने भी बंधू-जन उपस्थित हैं, वे ध्यान से सुनेंगे, और फ़िर अपने विचार व्यक्त करेंगे।

यथास्थिति यह है - "हम इस धरती पर जो आदमी-जात हैं, वे ज्ञानी, विज्ञानी, अथवा अज्ञानी में गण्य हैं।" यह मेरा कथन आप लोगों को कितना अनुकूल है, या प्रतिकूल है - यह आप आगे बताएँगे। हम ज्ञानी, विज्ञानी, और अज्ञानी मिल कर इस धरती पर जो कुछ भी किए - उसके फलन में पहले वन-सम्पदा समाप्त हो गयी, दूसरे - खनिज-सम्पदा समाप्त हो गयी। इन दोनों के समाप्त होने से यह धरती रहने योग्य नहीं बची - ऐसा विज्ञानी लोग कह रहे हैं। ये सब बात हम लोग सुनते ही हैं। इस पर आगे सोचने पर स्वयं-स्फूर्त रूप में यह बात आती है - हमने जो कुछ भी किए उससे यह धरती रहने-योग्य नहीं बची, अब यह रहने-योग्य बने उसके लिए भी कुछ सोचें! धरती मनुष्य के रहने योग्य कैसे बने - उस पक्ष में मैंने काम किया है।

धरती पर मनुष्य रहने योग्य कैसे बने - उसके लिए मैं अनुसंधान किया हूँ। मेरे अनुसंधान का उद्देश्य इतना ही है। इस अनुसंधान पूर्वक मैंने जो पाया, उसको स्पष्ट करने का कोशिश किया है। यह स्पष्ट हुआ या नहीं हुआ - यह आप ही लोग शोध करके बताएँगे। हर व्यक्ति को शोध करने का अधिकार है, समझने का अधिकार है, उस पर अपने विचारों को व्यक्त करने का अधिकार है। आज पैदा हुए बच्चे में यह अधिकार है, कल मरने वाले वृद्ध में भी यह अधिकार है।

प्रकारांतर से चलते हुए वर्तमान में हम मानव-जाति अपराध में फंस गए हैं। इससे पहले हमारे बुजुर्गों ने वेद-विचार में लिख कर दिया है - "भक्ति-विरक्ति में कल्याण है।" भौतिकवाद जब आया तो पहले से ही प्रलोभन से ग्रसित मनुष्य-जात "सुविधा-संग्रह" में फंस गया। सुविधा-संग्रह के चलते इस धरती से वन और खनिज दोनों समाप्त होते गए। वन और खनिज समाप्त होने से ऋतु-संतुलन प्रतिकूल होता गया। और धीरे-धीरे धरती बीमार हो गयी।

विज्ञानी यह बता रहे हैं - धरती का तापमान कुछ अंश और बढ़ जाने पर इस धरती पर आदमी रहेगा नहीं। सन १९५० से पहले यही विज्ञानी बताते रहे - यह धरती ठंडा हो रहा है। सन १९५० के बाद बताना शुरू किए - यह धरती गर्म हो रहा है। यह कैसे हो गया? इसका शोध करने पर पता चला

- इस धरती पर सब देश मिल कर २००० से ३००० बार nuclear tests किए हैं। ये test इस धरती पर ही हुए हैं। इन tests से जो ऊष्मा जनित होते है - उसको नापा जाता है। यह जो ऊष्मा जनित हुआ, वह धरती में ही समाया या कहीं उड़ गया? यह पूछने पर पता चलता है - यह ऊष्मा धरती में ही समाया - जिससे धरती का ताप बढ़ गया। धरती को बुखार हो गया है। अब और कितना ताप बढेगा उसका प्रतीक्षा करने में विज्ञानी लगे हैं। इसके साथ एक और विपदा हुआ - प्रदूषण का छा जाना। ईंधन-अवशेष से प्रदूषण हुआ। इन दोनों विपदाओं से धरती पर मनुष्य रहेगा या नहीं - इस पर प्रश्न-चिन्ह लग गया है।

धरती को मनुष्य ने अपने न रहने योग्य बना दिया। मनुष्य को धरती पर रहने योग्य बनाने के लिए यह अनुसंधान है।

"न्याय पूर्वक जीने" की प्रवृत्ति मनुष्य में कैसे स्थापित हो - उसको मैंने अनुसंधान किया है। न्याय पूर्वक जीने में मैं स्वयं प्रवृत्त हूँ। न्याय किसके साथ होना है? मनुष्य के साथ होना है, और मनुष्येत्तर-प्रकृति के साथ होना है। इसके बारे में हम थोड़ा यहाँ बात-चीत करेंगे।

मैं स्वयं एक वेद-मूर्ति परिवार से हूँ। मेरे शरीर का आयु इस समय ९० वर्ष है। इन ९० वर्ष में से पहले ३० वर्ष मैंने अपने घर-परिवार की परम्परा के अनुसार ही काम किया। ३० वर्ष के बाद के ६० वर्ष मैं इस अनुसंधान को करने और उससे प्राप्त फल को मानव-जाति को अर्पित करने में लगाया हूँ।

यह अनुसंधान कैसे किया? - यह बात आती है। हमारे शास्त्रों में लिखा है - अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एक मात्र स्थान है। उस पर विश्वास करते हुए, अमरकंटक को अनुकूल स्थान मानते हुए, मैं १९५० में अमरकंटक पहुँचा। अमरकंटक में मैंने साधना किया, और समाधि को देखा। समाधि को देखने पर पता चला - समाधि में कोई ज्ञान नहीं होता। समाधि में मैंने अपनी आशा, विचार, और इच्छा को चुप होते हुए देखा। एक-दो वर्ष तक मैंने समाधि की स्थिति को देखा - पर समाधि में ज्ञान नहीं हुआ।

उसके बाद समाधि का मूल्यांकन करने के क्रम में मैंने संयम किया - जिससे प्रकृति की हर वस्तु मेरे अध्ययन में आयी। अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व स्वरूप में है - यह बात मुझको बोध हुआ, ज्ञान हुआ, उसको जी कर के प्रमाणित करने की अर्हता आयी। ऐसे ज्ञान को जी कर के प्रमाणित करने में परस्परता में विश्वास होता है। जीने में ही विश्वास होता है, बस कहने मात्र से विश्वास नहीं होता। ऐसा मैंने स्वीकार किया। इस प्रकार जीते हुए लोगों तक इस बात को कैसे पहुंचाया जाए? इस पर सोचने पर शिक्षा-विधि द्वारा इसे प्रवाहित करने के उद्देश्य से वांग्मय तैयार किया।

अनुसंधान पूर्वक क्या उपलब्धि हुई? अनुसंधान की उपलब्धि है - समाधान। सभी आयामों, कोणों, परिपेक्ष्यों के लिए समाधान उपलब्ध हुआ। अनुसंधान पूर्वक मेरा स्वयं का अच्छी तरह समाधान-पूर्वक जीना बन गया। समाधान को जब प्रकाशित करने लगे तो लोगों को लगने लगा - हमको भी चाहिए, हमको भी चाहिए... ऐसा होते-होते हम यहाँ तक पहुंचे हैं।

समाधान के साथ यदि "समृद्धि" नहीं है तो हम प्रमाणित नहीं हो सकते - यह भी बात आया। समृद्धि का प्रयोजन है - शरीर पोषण, संरक्षण, और समाज-गति। सम्पूर्ण भौतिक-वस्तुओं का मानवीयता पूर्वक नियोजन इन्ही तीन स्थितियों में है। विज्ञानं द्वारा हम दूर-श्रवण, दूर-दर्शन, दूर-गमन संबन्धी वस्तुओं को जो हम पाये - उनसे अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति दोष हो गया। जिस के पास नहीं है - उसके पास नहीं ही रहा। जिसके पास है - उसके पास बहुत ज्यादा हो गया। इसके रहते उत्पादन-कार्य का नियंत्रण नहीं रहा। उत्पादन अनियंत्रित होने के फलन में धरती बीमार हो गयी। आदमी के बने रहने पर प्रश्न-चिन्ह लग गया। धरती बीमार हो गयी तो आदमी कहाँ रहेगा? आगे पीढी कहाँ रहेगा? यह भी सोचने का मुद्दा है। केवल आदमी को ही अपराध-मुक्त होने की आवश्यकता है। अपराध-मुक्त होने के लिए आदमी को सह-अस्तित्व में जीने की आवश्यकता है। आदमी को तीनो अवस्थाओं के साथ नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्वक जीने की आवश्यकता है।

स्वयं में जो बोध हुआ, अनुभव हुआ - उसको जीने के क्रम में हम दूसरों को बोध कराते हैं। इसका हमने काफी अभ्यास किया - जिसके फलस्वरूप देश में दूर-दूर तक एक आवाज सुनाने योग्य तो हुए। इस बात की आवाज तो सुनने में आया है - इसमें तो कोई दो राय नहीं है। इसके बाद कुछ लोगों में इसको अध्ययन करने की इच्छा भी हुई है। अभी इस प्रस्ताव के अध्ययन में लगे ज्यादा से ज्यादा लोग रायपुर में हैं। छत्तीसगढ़ राज्य-शिक्षा के तीनो विभाग - व्यवस्था, प्रशिक्षण, और शोध - ये तीनो मिल कर अध्ययन कर रहे हैं। करीब १०० लोग अध्ययन कर रहे हैं। हर आदमी स्वयं को प्रमाणित करने का अधिकार रखता है। हर बच्चे, बड़े, बुजुर्ग - स्वयं को प्रमाणित करने के अधिकार से संपन्न हैं। यह स्वीकारते हुए इस प्रस्ताव की शिक्षा-पद्दति को हमने नाम दिया - "चेतना-विकास - मूल्य-शिक्षा"। "चेतना-विकास - मूल्य-शिक्षा" के लिए ये लोग अध्ययन कर रहे हैं, और स्वयं को प्रमाणित करने के लिए कटि-बद्ध हैं। यहाँ हैदराबाद में भी काफी विद्वान ऐसा सोचते होंगे। इन सबको ध्यान में रखते हुए इस प्रस्ताव की उपयोगिता हमको समझ आता गया। जैसे-जैसे उपयोगिता समझ आता गया - हमारा उत्साह भी बढ़ता गया! उत्साह बढ़ता गया तो मेरा स्वस्थ रहना भी बन गया। जल्दी शरीर त्यागने की आवश्यकता नहीं है, कुछ दिन और देख लें इसका क्या फल-परिणाम होता है। इस तरह ९० वर्ष व्यय्तीत हुए हैं। जब तक साँस चलती है, इस प्रस्ताव का क्या प्रयोजन सिद्ध होता है - यह देखा जा सकता है। आगे आप सब प्रयोजनों को देखने के लिए उम्मीदवार हो ही सकते हैं, प्रयत्नशील हो सकते हैं, प्रयोजनों को प्रमाणित कर सकते हैं।

इस अनुसंधान को करने में (समाधि-संयम में) हमने २५ वर्ष लगाए। अनुसंधान की उपलब्धि के अनुरूप अपने जीने के तौर-तरीके को बनाने में १० वर्ष लगाए। उसके बाद संसार को इस प्रस्ताव की ज़रूरत है या नहीं - इसका सर्वेक्षण करने में १० वर्ष लगाए। संसार को इस प्रस्ताव की ज़रूरत है - यह निर्णय होने पर सन २००० से इसको लोगों तक पहुँचाना शुरू किए। सन २००० से अभी तक कितना काम हुआ है - यह अभी आप इस सम्मलेन में देख ही रहे हैं।

मेरे अनुसंधान की उपयोगिता समझ आने पर मेरी आवाज में भी थोड़ा बल आया। इससे यह कहना बना - **"अपराधों से सहमत हो कर हम इस धरती पर ज्यादा दिन रह नहीं पायेंगे।"** दूसरी बात - **"समझदारी से समाधान-संपन्न हो कर हम इस धरती पर चिरकाल तक रह सकते हैं।"**

समझदारी के लिए अध्ययन के स्वरूप को हमने शिक्षा-विधि से प्रस्तुत किया है। इस प्रस्ताव के लोकव्यापीकरण में संलग्न विभूतियों का यह सोचना है - "जीवन-विद्या से शुरू किया जाए - और अध्ययन में प्रवृत्ति पैदा किया जाए।" जीवन-विद्या की भनक तो देश के सभी प्रान्तों में करीब-करीब पहुँच गया है। इस सम्मलेन में यह पता चलता है - किस प्रांत में कितनी भनक पडी। इस बात को हम दूर-दूर तक पहुंचाने के योग्य हुए। लोगों तक पहुंचाने के क्रम में हममें संतुष्टि बनी हुई है। इस संतुष्टि को व्यक्त करने के क्रम में यह सम्मलेन है। सम्मलेन में परस्पर-चर्चा से पता चलता है - संसार में इस अनुसंधान की ज़रूरत है, समझदारी की ज़रूरत है, समाधान की ज़रूरत है, समृद्धि की ज़रूरत है।

अब हम इस अनुसन्धान के प्रयोजन की बात करेंगे।

हर मनुष्य के पास कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतंत्रता पूंजी के रूप में है। हर बच्चे के पास है, हर बड़े के पास है, हर बुड्ढे के पास है - उसका वह प्रयोग कर सकता है। कल्पनाशीलता के आधार पर कर्म-स्वतंत्रता का प्रयोग मनुष्य ने आज तक किया है। इस कमरे का छत जो बना है - वह कल्पनाशीलता के आधार पर बना है। जहाँ हम बैठे हैं - वह स्थान कल्पनाशीलता के आधार पर बना है। जो गाडी में हम घुमते हैं, हवाई-जहाज से आकाश में घूमते हैं - वह कल्पनाशीलता के आधार पर बना है। कल्पनाशीलता के आधार पर ही हम "सुविधा-संग्रह" को अपनाए हैं। हर मनुष्य पास यह कल्पनाशीलता कर्म-स्वतंत्रता उपलब्ध है। जीवन और शरीर के योगफल में कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतंत्रता प्रगट होती है। मरे हुए आदमी में यह प्रगट नहीं होती है। जीवन हो पर शरीर न हो - तब भी यह प्रगट नहीं होगी। शरीर हो पर जीवन न हो - तब भी यह प्रगट नहीं होगी।

कल्पनाशीलता और कर्म-स्वतंत्रता कैसे आ गया? "सह-अस्तित्व नित्य प्रगटन-शील है" - इस

सिद्धांत पर यह आधारित है। **सह-अस्तित्व नित्य प्रगटन-शील होने से अपने प्रतिरूप को मानव-स्वरूप में प्रस्तुत कर दिया।** धरती पर प्रगट होने के बाद मानव अपराधी हो गया। मुख्य बात इतना ही है। चोट की बात इतना ही है। इस चोट की बात को ध्यान में लाने पर हम अच्छी तरह से समझ सकते हैं - **मानव-जाति का अपराध-मुक्त होना नितांत आवश्यक है।**

यह बात बच्चे भी समझ सकते हैं, बड़े भी समझ सकते हैं। बिजनौर में एक स्कूल में इस बात को लेकर हमने एक प्रयोग किया - जिससे बच्चों में जो गुण प्रकट हुए, उससे बड़े-बुजुर्ग भी अपनी आदतों को सुधारने लगे। बच्चों के मुखरण से वहाँ के आगंतुक भी बहुत विस्मित हुए। वह स्कूल आगे चल नहीं पाया - क्योंकि जिस व्यक्ति ने जमीन दी थी, उसने वापिस ले ली। उसके बाद अछोटी के पास गाँव के स्कूल में प्रयोग किया तो वैसे ही विद्यार्थियों में मुखरण हुआ। वह मुखरण छत्तीसगढ़ शासन की दृष्टि में आ गया। यह शासन के ध्यान-आकर्षण होने का आधार बन गया। जिसके फलस्वरूप ३०००-४००० अध्यापकों के लिए ३ दिन का गोष्ठी हुआ। यह घटना आप के दृष्टिकोण के लिए ध्यान में ला सकते हैं। इतना दूर तो हम आ चुके हैं। पर आगे इसकी सम्भावना बहुत लम्बी-चौड़ी हैं।

"हर मानव सुधर सकता है." - यह इस बात से पहली सम्भावना है। हर मानव सुधर कर अपने सुधार को प्रमाणित कर सकता है। इस सम्भावना के विस्तार को क्या नापा जा सकता है? हर मनुष्य के सुधरने पर क्या होगा? जैसे हर गाय अपने वंश के अनुसार गायत्व के साथ व्यवस्था में जीता है... जैसे हर वृक्ष अपने बीज के अनुसार वृक्षत्व के साथ व्यवस्था में रहता है... उसके पूर्व जैसे हर पदार्थ परिणाम के अनुसार अपने त्व सहित व्यवस्था में रहता है... उसी प्रकार मानव सुधरने के बाद मानवत्व सहित व्यवस्था में जी सकता है।

इस अनुसंधान पूर्वक "मानव का अध्ययन" सम्भव हो गया है। अभी तक "मानव का अध्ययन" शून्य था। "मानव का अध्ययन" छोड़ कर आदर्शवाद भागा, और भौतिकवाद भी भाग ही रहा है। आदर्शवाद और भौतिकवाद मानव का अध्ययन नहीं करा पाये। यह अभिशाप मानव-जाति पर लगा हुआ है। मानव का अध्ययन न होने से मनमानी विचार-धाराएं निकली, मनमानी व्यवस्थाएं निकली। एक ही परिवार में बीस मतभेद निकले। इस तरह नर-नारियों में समानता का रास्ता नहीं निकला, दूसरे - अमीरी-गरीबी में संतुलन नहीं बन पाया। गरीब और ज्यादा गरीब होते गए। अमीर और अमीर होते गए। नर-नारियों में समानता और अमीरी-गरीबी में संतुलन के लिए "अच्छे" ढंग से भी जो प्रयोग हुए, "बुरे" ढंग से भी जो प्रयोग हुए - दोनों बुरे में ही अंत हुए। इस तरह मानव-जाति के उद्धार का रास्ता बना नहीं। अब इस अनुसन्धान पूर्वक नर-नारियों में समानता का भी सूत्र निकलता है, अमीरी-गरीबी में संतुलन का भी सूत्र निकलता है।

नर-नारियों में समानता समझदारी के आधार पर आता है। हर नर-नारी में कल्पनाशीलता और

कर्म-स्वतंत्रता रखा हुआ है, उसके आधार पर हर नर-नारी समझदारी को अपना सकते हैं। शरीर (रूप) के आधार पर नर-नारी में समानता होगा नहीं। रूप शरीर के साथ है, समझदारी जीवन के साथ है। धन सबके पास समान रूप में हो नहीं सकता। धन के आधार पर नर-नारियों में समानता होगा नहीं। पद सबको मिल नहीं सकता। पद के आधार पर नर-नारियों में समानता होगा नहीं। तलवार और बन्दूक (बल) के आधार पर नर-नारियो में समानता होगा नहीं। तलवार और बन्दूक सभी चला नहीं सकते। नर-नारियो में समानता समझदारी के आधार पर ही सम्भव है। हर नर-नारी समझदार हो सकते हैं।

हमारे देश में आदर्शवादी ज्ञान को स्पष्ट करना चाहते रहे - पर वह स्पष्ट नहीं हो पाया। या कहीं न कहीं उनका पतन हुआ है। या तो वे पूरी बात पाये नहीं, या बीच में पंडितों पुरोहितों के हाथ विकृत हो गया हो - यह हो सकता है। दोनों में से कुछ भी हुआ हो - समझदारी मानव-परम्परा में आया नहीं है। **मनुष्य में चाहत समझदारी का ही रहा है।** अभी यहाँ जितने भी लोग बैठे हैं, नहीं बैठे हैं - सबमें समझदारी की चाहत बनी हुई है। मेरे अनुसार हर व्यक्ति समझदार होना चाहता है - उसके लिए अवसर पैदा किया जाए। वस्तु से समृद्ध होने के लिए अवसर पैदा किया जाए।

"नर नारियों में समानता" और "अमीरी गरीबी में संतुलन" होने पर हम इस धरती पर अनादि काल तक रह सकते हैं।

मानव द्वारा धरती के साथ अपराध प्रधान रूप से खनिज-कोयला, खनिज-तेल, और विकीरणीय धातुओं का अपहरण करने से हुआ है। इन तीन वस्तुओं के अपहरण करने से धरती असंतुलित हुई है। विकीरणीय धातुओं का प्रयोग ही ३००० बार nuclear tests करने में किया गया है। उससे जनित भीषण ताप धरती में ही समाया है। फलस्वरूप धरती बीमार हो गयी। धरती यदि स्वस्थ रहेगा तभी मानव स्वस्थ रूप में कुछ कर सकता है। धरती ही स्वस्थ नहीं रहेगा तो मानव क्या कर लेगा? कहाँ करेगा? इसको सोच कर के तय करना पड़ेगा। हमको धरती को संतुलित रख कर जीना है या नहीं? यदि जीना है तो अपराध-प्रवृत्ति से मुक्त होना आवश्यक है।

संवेदनाओं के पीछे पागल होना ही अपराध-प्रवृत्ति में फँसना है। संवेदनाओं को संतुष्टि देने के पीछे हम दौड़ते हैं तो अपराध के अलावा कुछ होगा नहीं। समझदारी पूर्वक यदि दौड़ते हैं तो समाधान के अलावा कुछ होगा नहीं।

रायपुर में २०-२५ धनाढ्य परिवारों की नारियों की सभा में पूछा गया - नर-नारियों को संवेदनाओं को तृप्त करने के लिए दौड़ना जरूरी है - या संवेदनाओं को नियंत्रित करना जरूरी है? ढाई घंटा चर्चा

करने पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला - "यदि संवेदनाओं के पीछे ही हम दौड़ते हैं तो हम जानवरों से अधिक कुछ नहीं हैं। संवेदनाओं को नियंत्रित करके ही हम मानव बन सकते हैं।" यह हर व्यक्ति स्वयं में निरीक्षण कर सकता है - हम कितना संवेदनाओं के पीछे लट्टू हैं, हमारी संवेदनाएं कितनी नियंत्रित हैं। हर नर-नारी यह परीक्षण कर सकते हैं, और उसके आधार पर अपने बच्चों को उदबोधन कर सकते हैं।

संवेदनाओं को तृप्त करने के लिए हम कितना भी काम करें - वे तृप्त होती नहीं हैं। इस तरह काम करने से केवल अपराध होता है। मनुष्य स्वयं में तृप्ति पूर्वक समाधान को प्रमाणित करता है। मनुष्य स्वयं में अतृप्ति पूर्वक अपराध को प्रमाणित करता है।

हमको तृप्त रहना है, या अतृप्त रहना है - इसको हमें तय करना है। हम सब यही तय करने के लिए यहाँ एकत्र हुए हैं। संवेदनाओं को तृप्त करने में लगे रहना है, या संवेदनाओं को नियंत्रित करना है? इसको तय करने के लिए हम यहाँ हैं।

"संवेदनाओं को नियंत्रित करना है" - वहीं से "विकल्प" के अध्ययन की ज़रूरत पड़ती है।

http://1.bp.blogspot.com/_fdpyIQQB1N4/StQXInGo7cI/AAAAAAAAARA/7BQHp0SzpKo/s1600-h/02102009289.jpgयह प्रस्ताव आदर्शवाद और भौतिकवाद दोनों का "विकल्प" है।

आदर्शवाद शुरू भी "रहस्य" से करता है, और उसका अंत भी "रहस्य" में ही है। दूसरे - भौतिकवाद से "सुविधा-संग्रह" ही जीने का लक्ष्य बनता है। सुविधा-संग्रह का कोई तृप्ति बिन्दु होता नहीं है। कितनी भी सुविधा पैदा करें, और सुविधा पैदा करने की जगह बना ही रहता है। कितना भी संग्रह करें, और आगे की संख्या रखा ही रहता है।

विकल्प विधि से सोचने पर यह निकलता है - "मानव-लक्ष्य समाधान-समृद्धि-अभय-सह-अस्तित्व है।"

हमें "सुविधा-संग्रह" के पीछे ही लगे रहना है, या "समाधान-समृद्धि" की ओर चलना है - यह हमको निर्णय करना है।

संवेदनाओं को तृप्त करने के लिए दौड़ते ही रहना है, या संवेदनाओं को नियंत्रित रखना है - यह हमको निर्णय करना है।

समाधान-समृद्धि की ओर चलना है, और संवेदनाओं को नियंत्रित रखना है तो उसके लिए "समझदारी" अवश्यम्भावी है। "समझदारी" का मतलब है - सह-अस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व को

समझना और सह-अस्तित्व स्वरूप में जीना।

सह-अस्तित्व स्वरूप में जीने में हमारे न्याय-पूर्वक जीने की बात बनती है। न्याय पूर्वक जीने में किसी का किसी पर "आरोप", किसी की किसी से "शिकायत", किसी की किसी पर "आपत्ति" बनता नहीं है। सह-अस्तित्व विधि को छोड़ कर यदि हम व्यक्तिवादी/समुदायावादी विधि से जीने के बारे में सोचते हैं, तो समस्याएं तैयार हो जाती हैं। मानव मानवीयता पूर्वक जीने से व्यक्तिवादिता से मुक्त होता है। चेतना-विकास को जब समझते हैं, जीते हैं तो व्यक्तिवाद/समुदायवाद दोनों से मुक्त हो जाते हैं। चेतना-विकास को समझने और जीने का प्रमाण मैं स्वयं हूँ। ऐसे प्रमाणों का जो सत्यापन प्रस्तुत करेंगे - उन पर आप विश्वास कर सकते हैं।

इतना कह कर मैं आपको आर्शीवाद और नमन करूंगा। आप सभी शुभ चाहते हैं - इसलिए आपको नमन! आप सभी का शुभ के लिए प्रण सफल हो - उसके लिए आर्शीवाद! इतना सब कहने के बाद इस कहे पर आपको जो भी पूछना है - उसका मैं स्वागत करूंगा। आपके प्रश्नों का उत्तर मेरे पास है। धरती पर जो कुछ भी समस्या है - उसका उत्तर मेरे पास है।

- बाबा श्री नागराज शर्मा के उदबोधन पर आधारित (1 अक्टूबर, २००९ - हैदराबाद)